

आजगरगीता

[आजगरगीतामें एक विरक्त अवधूतद्वारा राजा प्रह्लादको दिये गये उपदेशोंका वर्णन है। यह प्रकरण महाभारतके शान्तिपर्वमें भीष्मद्वारा युधिष्ठिरको दिये गये उपदेशोंके मध्य आया है। यह गीता न केवल विरक्त संन्यासियोंके लिये उपयोगी है, अपितु उन वृद्धजनोंके लिये भी विशेष उपयोगी है, जो प्रायः अपने सभी पारिवारिक दायित्वोंको पूर्ण कर चुके हैं तथा शेष जीवन सुख-शान्तिसे बिताना चाहते हैं। सुविधाओं तथा अभावोंमें सम रहनेकी प्रेरणा देनेवाली यह गीता सानुवाद यहाँ प्रस्तुत की जा रही है—]

युधिष्ठिर उवाच

केन वृत्तेन वृत्तज्ञ वीतशोकश्चरेन्महीम् ।
किञ्च कुर्वन्नरो लोके प्राप्नोति गतिमुत्तमाम् ॥ १ ॥

राजा युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! आप सदाचारके स्वरूपको जाननेवाले हैं। कृपया यह बताइये, किस तरहके आचारको अपनाकर मनुष्य शोकरहित हो इस पृथ्वीपर विचरण कर सकता है ? और इस जगत्में कौन-सा कर्म करके वह उत्तम गति पा सकता है ? ॥ १ ॥

भीष्म उवाच

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
प्रह्लादस्य च संवादं मुनेराजगरस्य च ॥ २ ॥

भीष्मजी कहते हैं—राजन् ! इस विषयमें भी प्रह्लाद तथा अजगरवृत्तिसे रहनेवाले एक मुनिके संवादरूप प्राचीन इतिहासका दृष्टान्त दिया जाता है ॥ २ ॥

चरन्तं ब्राह्मणं कञ्चित् कल्पचित्तमनामयम् ।
पप्रच्छ राजा प्रह्लादो बुद्धिमान् बुद्धिसम्मतम् ॥ ३ ॥

एक सुदृढ़चित्त, दुःख-शोकसे रहित तथा बुद्धिसम्मत ब्राह्मणको

पृथ्वीपर विचरते देख बुद्धिमान् राजा प्रह्लादने उससे इस प्रकार पूछा ॥ ३ ॥

प्रह्लाद उवाच

स्वस्थः शक्तो मृदुर्दान्तो निर्विधित्सोऽनसूयकः ।

सुवाक् प्रगल्भो मेधावी प्राज्ञश्चरसि बालवत् ॥ ४ ॥

प्रह्लाद बोले—ब्रह्मन्! आप स्वस्थ, शक्तिमान्, मृदु, जितेन्द्रिय, कर्मारम्भसे दूर रहनेवाले, दूसरोंके दोषोंपर दृष्टि न डालनेवाले, सुन्दर और मधुर वचन बोलनेवाले, निर्भीक, प्रतिभाशाली, मेधावी तथा तत्त्वज्ञ होकर भी बालकोंके समान विचर रहे हैं ॥ ४ ॥

नैव प्रार्थयसे लाभं नालाभेष्वनुशोचसि ।

नित्यतृप्त इव ब्रह्मन् न किञ्चिदिव मन्यसे ॥ ५ ॥

न आप कोई लाभ चाहते हैं और न हानि होनेपर उसके लिये ही शोक करते हैं। ब्रह्मन्! आप नित्यतृप्त-से रहते हुए न किसी वस्तुको प्रिय मानते हैं और न अप्रिय ॥ ५ ॥

स्रोतसा ह्रियमाणासु प्रजासु विमना इव ।

धर्मकामार्थकार्येषु कूटस्थ इव लक्ष्यसे ॥ ६ ॥

सारी प्रजा काम-क्रोध आदिके प्रवाहमें पड़कर बही जा रही है; परंतु आप उधरसे उदासीन-जैसे जान पड़ते हैं तथा धर्म, अर्थ एवं काम-सम्बन्धी कार्योंके प्रति भी निश्चेष्ट-से दिखायी देते हैं ॥ ६ ॥

नानुतिष्ठसि धर्मार्थौ न कामे चापि वर्तसे ।

इन्द्रियार्थाननादृत्य मुक्तश्चरसि साक्षिवत् ॥ ७ ॥

धर्म और अर्थ-सम्बन्धी कार्योंका आप अनुष्ठान नहीं करते हैं, काममें भी आपकी प्रवृत्ति नहीं है। आप इन्द्रियोंके सम्पूर्ण विषयोंकी उपेक्षा करके साक्षीके समान मुक्तरूपसे विचरते हैं ॥ ७ ॥

का नु प्रज्ञा श्रुतं वा किं वृत्तिर्वा का नु ते मुने ।

क्षिप्रमाचक्ष्व मे ब्रह्मन् श्रेयो यदिह मन्यसे ॥ ८ ॥

मुने! आपके पास कौन-सी ऐसी बुद्धि, कैसा शास्त्रज्ञान अथवा

कौन-सी वृत्ति है, जिससे आपका जीवन ऐसा बन गया है? ब्रह्मन्! आपके मतसे इस जगत्में मेरे लिये जो श्रेयका साधन हो, उसे शीघ्र बतायें ॥ ८ ॥

भीष्म उवाच

अनुयुक्तः स मेधावी लोकधर्मविधानवित् ।

उवाच श्लक्ष्णया वाचा प्रह्लादमनपार्थया ॥ ९ ॥

भीष्मजी कहते हैं—राजन्! प्रह्लादके इस प्रकार पूछनेपर लोक-धर्मके विधानको जाननेवाले उन मेधावी मुनिने उनसे मधुर एवं सार्थक वाणीमें इस प्रकार कहा— ॥ ९ ॥

पश्य प्रह्लाद भूतानामुत्पत्तिमनिमित्ततः ।

हासं वृद्धिं विनाशं च न प्रहृष्ये न च व्यथे ॥ १० ॥

प्रह्लाद! देखो, इस जगत्के प्राणियोंकी उत्पत्ति, वृद्धि, हास और विनाश कारणरहित सत्स्वरूप परमात्मासे ही हुए हैं; इस कारण मैं उनके लिये न तो हर्ष प्रकट करता हूँ और न व्यथित ही होता हूँ ॥ १० ॥

स्वभावादेव संदृश्या वर्तमानाः प्रवृत्तयः ।

स्वभावनिरताः सर्वाः परितुष्येन् केनचित् ॥ ११ ॥

ऐसा समझना चाहिये, पूर्वकृत कर्मानुसार बने हुए स्वभावसे ही प्राणियोंकी वर्तमान प्रवृत्तियाँ प्रकट हुई हैं; अतः समस्त प्रजा स्वभावमें ही तत्पर है, उनका दूसरा कोई आश्रय नहीं है। इस रहस्यको समझकर मनुष्यको किसी भी परिस्थितिमें सन्तुष्ट नहीं होना चाहिये ॥ ११ ॥

पश्य प्रह्लाद संयोगान् विप्रयोगपरायणान् ।

सञ्चयांश्च विनाशान्तान् न क्वचिद् विदधे मनः ॥ १२ ॥

प्रह्लाद! देखो, जितने संयोग हैं, उनका पर्यवसान वियोगमें ही होता है और जितने संचय हैं, उनकी समाप्ति विनाशमें ही होती है। यह सब देखकर मैं कहीं भी अपने मनको नहीं लगाता हूँ ॥ १२ ॥

अन्तवन्ति च भूतानि गुणयुक्तानि पश्यतः ।
उत्पत्तिनिधनज्ञस्य किं कार्यमवशिष्यते ॥ १३ ॥

जो गुणयुक्त सम्पूर्ण भूतोंको नाशवान् देखता है तथा उत्पत्ति और प्रलयके तत्त्वको जानता है, उसके लिये यहाँ कौन-सा कार्य अवशिष्ट रह जाता है? ॥ १३ ॥

जलजानामपि ह्यन्तं पर्यायेणोपलक्ष्ये ।
महतामपि कायानां सूक्ष्माणां च महोदधौ ॥ १४ ॥

महासागरके जलमें पैदा होनेवाले विशाल शरीरवाले तिमि आदि मत्स्यों तथा छोटे-छोटे कीड़ोंका भी मैं बारी-बारीसे विनाश होता देखता हूँ ॥ १४ ॥

जङ्गमस्थावराणां च भूतानामसुराधिप ।
पार्थिवानामपि व्यक्तं मृत्युं पश्यामि सर्वशः ॥ १५ ॥

असुरराज! पृथ्वीपर भी जितने स्थावर-जंगम प्राणी हैं, उन सबकी मृत्यु मुझे स्पष्ट दिखायी दे रही है ॥ १५ ॥

अन्तरिक्षचराणां च दानवोत्तम पक्षिणाम् ।
उत्तिष्ठते यथाकालं मृत्युर्बलवतामपि ॥ १६ ॥

दानवश्रेष्ठ! आकाशमें विचरनेवाले बलवान् पक्षियोंके समक्ष भी यथासमय मृत्यु आ पहुँचती है ॥ १६ ॥

दिवि सञ्चरमाणानि ह्रस्वानि च महान्ति च ।
ज्योतींष्यपि यथाकालं पतमानानि लक्ष्ये ॥ १७ ॥

आकाशमें जो छोटे-बड़े ज्योतिर्मय नक्षत्र विचर रहे हैं, उन्हें भी मैं यथासमय नीचे गिरते देखता हूँ ॥ १७ ॥

इति भूतानि सम्पश्यन्ननुषक्तानि मृत्युना ।
सर्वसामान्यगो विद्वान् कृतकृत्यः सुखं स्वपे ॥ १८ ॥

इस प्रकार सारे प्राणियोंको मैं मृत्युके पाशमें बद्ध देखता हूँ; इसलिये तत्त्वको जानकर कृतकृत्य हो सबके प्रति समान भाव रखता

हुआ सुखसे सोता हूँ ॥ १८ ॥

सुमहान्तमपि ग्रासं ग्रसे लब्धं यदृच्छया ।

शये पुनरभुञ्जानो दिवसानि बहून्यपि ॥ १९ ॥

यदि दैवेच्छासे अकस्मात् अधिक भोजन प्राप्त हो जाय तो मैं बहुत खा लेता हूँ, ग्रासमात्र मिले तो उसीमें सन्तुष्ट रहता हूँ और न मिला तो बहुत दिनोंतक बिना खाये-पीये भी सो रहता हूँ ॥ १९ ॥

आशयन्त्यपि मामनं पुनर्बहुगुणं बहु ।

पुनरल्पं पुनःस्तोकं पुनर्नैवोपपद्यते ॥ २० ॥

फिर कितने ही लोग आकर मुझे अनेक गुणोंसे सम्पन्न बहुत-सा अन्न खिला देते हैं। पुनः कभी बहुत थोड़ा, कभी थोड़ेसे भी थोड़ा भोजन मिलता है और कभी वह भी नहीं मिलता ॥ २० ॥

कणं कदाचित् खादामि पिण्याकमपि च ग्रसे ।

भक्षये शालिमांसानि भक्षांश्चोच्चावचान् पुनः ॥ २१ ॥

कभी चावलकी कनी खाता हूँ, कभी तिलकी खली ही खाकर रह जाता हूँ और कभी अगहनीके चावलका भात भरपेट खाता हूँ। इस प्रकार मुझे बढ़िया-घटिया सभी तरहके भोजन बारम्बार प्राप्त होते रहते हैं ॥ २१ ॥

शये कदाचित् पर्यङ्के भूमावपि पुनः शये ।

प्रासादे चापि मे शय्या कदाचिदुपपद्यते ॥ २२ ॥

कभी पलंगपर सोता हूँ, कभी पृथ्वीपर ही पड़ा रहता हूँ और कभी-कभी मुझे महलके भीतर बिछी हुई बहुमूल्य शय्या भी उपलब्ध हो जाती है ॥ २२ ॥

धारयामि च चीराणि शाणक्षौमाजिनानि च ।

महार्हाणि च वासांसि धारयाम्यहमेकदा ॥ २३ ॥

मैं कभी तो चिथड़े अथवा वल्कल पहनकर रहता हूँ, कभी सनके, कभी रेशमके और कभी मृगचर्मके वस्त्र धारण करता हूँ तथा किसी

एक कालमें बहुत-से बहुमूल्य वस्त्रोंको भी पहन लेता हूँ ॥ २३ ॥

न संनिपतितं धर्म्यमुपभोगं यदृच्छया ।
प्रत्याचक्षे न चाप्येनमनुरुध्ये सुदुर्लभम् ॥ २४ ॥

यदि दैववश मुझे कोई धर्मानुकूल भोग्य पदार्थ प्राप्त हो जाय तो मैं उससे द्वेष नहीं करता हूँ और प्राप्त न होनेपर किसी दुर्लभ भोगकी भी कभी इच्छा नहीं करता ॥ २४ ॥

अचलमनिधनं शिवं विशोकं
शुचिमतुलं विदुषां मते प्रविष्टम् ।
अनभिमतमसेवितं विमूढै-
व्रतमिदमाजगरं शुचिश्चरामि ॥ २५ ॥

मैं सदा पवित्रभावसे रहकर इस अजगरवृत्तिका अनुसरण करता हूँ। यह अत्यन्त सुदृढ़, मृत्युसे दूर रखनेवाली, कल्याणमय, शोकहीन, शुद्ध, अनुपम और विद्वानोंके मतके अनुकूल है। मूर्ख मनुष्य न तो इसे मानते हैं और न इसका सेवन ही करते हैं ॥ २५ ॥

अचलितमतिरच्युतः स्वधर्मात्
परिमितसंसरणः परावरज्ञः ।

विगतभयकषायलोभमोहो
व्रतमिदमाजगरं शुचिश्चरामि ॥ २६ ॥

मेरी बुद्धि अविचल है, मैं अपने धर्मसे च्युत नहीं हुआ हूँ, मेरा सांसारिक व्यवहार परिमित हो गया है, मुझे उत्तम और अधमका ज्ञान है, मेरे हृदयसे भय, राग-द्वेष, लोभ और मोह दूर हो गये हैं तथा पवित्रभावसे रहकर इस अजगरोचित व्रतका आचरण करता हूँ ॥ २६ ॥

अनियतफलभक्ष्यभोज्यपेयं
विधिपरिणामविभक्तदेशकालम् ।

हृदयसुखमसेवितं

कदर्यै-

व्रतमिदमाजगरं

शुचिश्चरामि ॥ २७ ॥

यह आजगर-सम्बन्धी व्रत मेरे हृदयको सुख देनेवाला है। इसमें भक्ष्य, भोज्य, पेय और फल आदिके मिलनेकी कोई नियत व्यवस्था नहीं रहती—अनियतरूपसे जो कुछ मिल जाय, उसीसे निर्वाह करना होता है। इस व्रतमें प्रारब्धके परिणामके अनुसार देश और कालका विभाग नियत है। विषयलोलुप नीच पुरुष इसका सेवन नहीं करते, मैं पवित्रभावसे इसी व्रतका आचरण करता हूँ ॥ २७ ॥

इदमिदमिति

तृष्णयाभिभूतं

जनमनवाप्तधनं

विषीदमानम्।

निपुणमनुनिशम्य

तत्त्वबुद्ध्या

व्रतमिदमाजगरं

शुचिश्चरामि ॥ २८ ॥

जो यह मिले, वह मिले—इस प्रकार तृष्णासे दबे रहते हैं और धन न मिलनेके कारण निरन्तर विषाद करते हैं; ऐसे लोगोंकी दशा अच्छी तरह देखकर तात्त्विक बुद्धिसे सम्पन्न हुआ मैं पवित्रभावसे इस आजगरव्रतका आचरण करता हूँ ॥ २८ ॥

बहुविधमनुदृश्य

चार्थहेतोः

कृपणमिहार्यमनार्यमाश्रयन्तम्

।

उपशमरुचिरात्मवान्

प्रशान्तो

व्रतमिदमाजगरं

शुचिश्चरामि ॥ २९ ॥

मैं बारम्बार देखता हूँ कि श्रेष्ठ मनुष्य भी धनके लिये दीनभावसे नीच पुरुषका आश्रय लेते हैं। यह देखकर मेरी रुचि प्रशान्त हो गयी है। अतः मैं अपने स्वरूपको प्राप्त और सर्वथा शान्त हो गया हूँ और पवित्रभावसे इस आजगरव्रतका आचरण करता हूँ ॥ २९ ॥

सुखमसुखमलाभमर्थलाभं

रतिमरतिं मरणं च जीवितं च ।

विधिनियतमवेक्ष्य

तत्त्वतोऽहं

व्रतमिदमाजगरं

शुचिश्चरामि ॥ ३० ॥

सुख-दुःख, लाभ-हानि, अनुकूल और प्रतिकूल तथा जीवन और मरण—ये सब दैवके अधीन हैं। इस प्रकार यथार्थरूपसे जानकर मैं शुद्धभावसे इस आजगरव्रतका आचरण करता हूँ ॥ ३० ॥

अपगतभयरागमोहदर्यो

धृतिमतिबुद्धिसमन्वितः

प्रशान्तः ।

उपगतफलभोगिनो

निशम्य

व्रतमिदमाजगरं

शुचिश्चरामि ॥ ३१ ॥

मेरे भय, राग, मोह और अभिमान नष्ट हो गये हैं। मैं धृति, मति और बुद्धिसे सम्पन्न एवं पूर्णतया शान्त हूँ और प्रारब्धवश स्वतः अपने समीप आयी हुई वस्तुका ही उपभोग करनेवालोंको देखकर मैं पवित्रभावसे इस आजगरव्रतका आचरण करता हूँ ॥ ३१ ॥

अनियतशयनासनः

प्रकृत्या

दमनियमव्रतसत्यशौचयुक्तः ।

अपगतफलसञ्चयः

प्रहृष्टो

व्रतमिदमाजगरं

शुचिश्चरामि ॥ ३२ ॥

मेरे सोने-बैठनेका कोई नियत स्थान नहीं है। मैं स्वभावतः दम, नियम, व्रत, सत्य और शौचाचारसे सम्पन्न हूँ। मेरे कर्मफल-संचयका नाश हो चुका है। मैं प्रसन्नतापूर्वक पवित्रभावसे इस आजगरव्रतका आचरण करता हूँ ॥ ३२ ॥

अपगतमसुखार्थमीहनार्थै-

रुपगतबुद्धिरवेक्ष्य

चात्मसंस्थम् ।

तृषितमनियतं मनो नियन्तुं
व्रतमिदमाजगरं शुचिश्चरामि ॥ ३३ ॥

जिनका परिणाम दुःख है, उन इच्छाके विषयभूत समस्त पदार्थोंसे जो विरक्त हो चुका है, ऐसे आत्मनिष्ठ महापुरुषको देखकर मुझे ज्ञान प्राप्त हो गया है। अतः मैं तृष्णासे व्याकुल असंयत मनको वशमें करनेके लिये पवित्रभावसे इस आजगरव्रतका आचरण करता हूँ ॥ ३३ ॥

न हृदयमनुरुध्य वाङ्मनो वा
प्रियसुखदुर्लभतामनित्यतां च ।

तदुभयमुपलक्षयन्निवाहं
व्रतमिदमाजगरं शुचिश्चरामि ॥ ३४ ॥

मन, वाणी और बुद्धिकी उपेक्षा करके इनको प्रिय लगनेवाले विषय-सुखोंकी दुर्लभता तथा अनित्यता—इन दोनोंको देखनेवालेकी भाँति मैं पवित्रभावसे इस आजगरव्रतका आचरण करता हूँ ॥ ३४ ॥

बहुकथितमिदं हि बुद्धिमद्भिः
कविभिरपि प्रथयद्भिरात्मकीर्तिम् ।

इदमिदमिति तत्र तत्र हन्त
स्वपरमतैर्गहनं प्रतर्कयद्भिः ॥ ३५ ॥

अपनी कीर्तिका विस्तार करनेवाले विद्वानों और बुद्धिमानोंने अपने और दूसरोंके मतसे गहन तर्क और वितर्क करके 'ऐसे करना चाहिये' 'ऐसे करना चाहिये' इत्यादि कहकर इस व्रतकी अनेक प्रकारसे व्याख्या की है ॥ ३५ ॥

तदिदमनुनिशम्य विप्रपातं
पृथगभिपन्नमिहाबुधैर्मनुष्यैः ।

अनवसितमनन्तदोषपारं
नृषु विहरामि विनीतदोषतृष्णाः ॥ ३६ ॥

मूर्खलोग इस आजगरवृत्तिको सुनकर इसे पहाड़की चोटीसे

गिरनेकी भाँति भयंकर समझते हैं। परंतु उनकी वह मान्यता भिन्न है। मैं इस अजगरवृत्तिको अज्ञानका नाशक और समस्त दोषोंसे रहित मानता हूँ। अतः दोष और तृष्णाका त्याग करके मनुष्योंमें विचरता हूँ ॥ ३६ ॥

भीष्म उवाच

अजगरचरितं व्रतं महात्मा
य इह नरोऽनुचरेद् विनीतरागः ।
अपगतभयलोभमोहमन्युः

स खलु सुखी विचरेदिमं विहारम् ॥ ३७ ॥

भीष्मजी कहते हैं—राजन्! जो महापुरुष राग, भय, लोभ, मोह और क्रोधको त्यागकर इस आजगरव्रतका पालन करता है, वह इस लोकमें सानन्द विचरण करता है ॥ ३७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि आजगरगीता सम्पूर्णा ॥

